11

नियन्त्रण के लिए संघर्ष (4:1-10)

इन्टरनेशनल बाइबल कॉलेज के छात्र के रूप में मुझे एक दिन चैपल के दौरान एक प्रसिद्ध और बहुत घूमने वाले प्रचारक को यह कहते हुए सुनना याद है, ''कलीसिया में हमें सबसे बड़ी समस्या यह मिलती है कि हमें यह पता नहीं है कि हम एक-दूसरे को साथ लेकर कैसे चलें।'' अधिकतर जवानों, अन्डरग्रेजुएट छात्रों की तरह मैं अतिसंवेदनशील था और उस बात ने मुझे ज़ोर का झटका दिया। मैं कई कारणों से इस बात से प्रभावित हुआ था। पहले तो, उस आदमी के घूमने और सम्पर्कों से जिसने यह बात कही थी मुझे प्रभावित किया। फिर इस तथ्य ने मुझे प्रभावित किया कि हमारी संगति के अन्दर कई धड़े पाए जाते हैं। *वेयर द सेंट्स मीट* के 1987 के अंक में मसीह की कलीसियाओं के उन्नीस विभिन्न धड़ों का नाम दिया गया है। अन्त में मुझे कुछ बेकार की असहमति, विवाद या फूट के साथ ''अपने पैरों में गोली मारती'' बढ़ती कलीसियाओं, रोमांचित कलीसियाओं को सुनना याद आया। परन्तु हम अपने वचन पाठ याकूब 4:1-10 से देखेंगे कि ऐसी समस्या का केवल संकेत है न कि समस्या।

हम याकूब के लेख से यह पता लगा रहे हैं कि उसके समय के मसीही लोग आज के मसीही लोगों से अधिक अलग नहीं थे। उनके जीवनों में भीतर और बाहर से समस्याएं थीं। उन्हें दूसरों के साथ सही ढंग से सम्बन्ध बनाने में कठिनाई थी, विशेषकर किसी और आर्थिक वर्ग के लोगों से। कई अपने विश्वास से अपने व्यवहार को प्रभावित नहीं होने देना चाहते थे। कई बहस करते, आलोचना करते या अपने आपको ऊंचा दिखाते हुए बहुत अधिक बोल रहे थे। अब हम देखेंगे कि ये आरम्भिक मसीही लोग एक और ढंग से हमारे जैसे थे। जिसमें वे धार्मिकता को बढ़ाने के लिए आवश्यक शांति का माहौल बनाने के बजाय (3:18) ''लड़ाइयां और झगड़े'' (4:1) वाले माहौल में रह रहे थे।

याकूब उनका (और हमारा) सामना इस तर्क के साथ करता है कि वे एक दूसरे के साथ मिलकर क्यों नहीं चल सकते।

झगड़ा (4:1-3)

तुरन्त (4:1) याकूब उन्हें उनकी समस्या के मूल अर्थात ''लड़ाइयों और झगड़ों'' का कारण बताना चाहता है। याकूब अपने आपको मसीही कहलाने वाले लोगों से बात कर रहा था। उसने ''तुम में'' वाक्यांश का इस्तेमाल किया। वे मसीह के अनुयायियों के रूप में एक दूसरे से नहीं मिल रहे थे। हमें आश्चर्य होता है, पर नये नियम की किसी कलीसिया की समीक्षा करने पर हमें पता चलता है कि उनमें झगड़े होते थे। कुरिन्थुस की कलीसिया के लोग एक दूसरे को अदालत में मिल रहे थे और सभा में एक दूसरे का मुकाबला कर रहे थे (1 कुरिन्थियों 6:1-8; 14:23-40)। गलातिया के विश्वासी एक दूसरे को ''दांत से काटते और फाड़ खाते'' थे (गलातियों 5:15)। यहां तक कि पौलुस की प्रिय फिलिप्पे की कलीसिया में भी दो स्त्रियां थीं

जो इकट्ठी नहीं चल सकती थीं (फिलिप्पियों 4:2, 3)। याकूब एक ऐसी समस्या की बात कर रहा है, जो आरम्भिक कलीसिया में थी और 2011 के दशक में भी है।

समस्या के विवरण के लिए याकूब द्वारा इस्तेमाल किए गए शब्दों की सामर्थ पर विचार करना अभिभूत करने वाला है। NIV का अनुवाद ''लड़ाइयां और झगड़े'' सम्भवतया कमज़ोर है। अन्य बड़े अनुवादों (KJV, ASV, RSV) में ''युद्ध और लड़ाइयां'' है। 4:1-3 में याकूब रूपक के रूप में युद्ध की भाषा का इस्तेमाल करता है। परन्तु याकूब रूपकों का इस्तेमाल कर रहा है इसलिए हमें उसके शब्दों के बदल से और उस आतंक से भागना नहीं चाहिए जो वे हमारे मन में डालने के लिए रखे गए हैं। बीसवीं शताब्दी में मीडिया की तरक्की के कारण और संसार भर में युद्धों की खबरें आने के कारण, हम इसके आदी हो चुके हैं। सब पीढ़ियों में से सम्भवतया हम ही युद्ध की शब्दावली के व्यक्तिगत और नैतिक आघात को समझने के अयोग्य हैं। हमें होश में आने की आवश्यकता है कि याकूब क्या कह रहा है। याकूब ने मसीही लोगों में पाए जाने वाले विवादों और झगड़ों, शत्रुता और बुरी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए युद्ध के शब्दों को चुना क्योंकि इसके आतंक को समझाने का और कोई तरीका नहीं है, न कि इसलिए कि इसे कहने का कोई और ढंग नहीं है। वह परमेश्वर की नज़र से स्थानीय कलीसिया के सम्बन्धों को देख रहा है और हमें दिखाना चाहता है।

एक माहिर सर्जन की तरह, याकूब शरीर को नाश कर रहे कैंसर को दिखाने के लिए हमें खोल देता है। याकूब के समय में (और इक्कीसवीं शताब्दी के) मसीही लोगों के इकट्ठे न चल सकने का कारण यह है कि वे अपने सुख विलासों में फंसे थे और उन्हीं के द्वारा चलाए जाते थे (4:1ख)। नियन्त्रण के लिए मसीही लोगों के भीतर संघर्ष जारी है। याकूब विश्वासी के भीतरी संघर्ष के वर्णन के लिए चित्र की भाषा का इस्तेमाल करता है। यह संघर्ष इस पसन्द पर है कि हम स्वार्थी जीवन को चुनें या निस्वार्थ जीवन को।

गलत पसन्द चुनने पर, उस बेकाबू व्यक्ति की इच्छा एक मसीही के व्यवहार तथा कार्यों में दूसरे के प्रति हावी हो रही थी (4:2)। स्पष्टतया स्थानीय कलीसिया में सम्बन्ध बिगड़ रहे थे। एक मसीही किसी दूसरे को मिल रहे सम्मान को पाना चाहता था और उसे पाने के लिए कुछ भी कर सकता था। उनकी स्थिति बिगड़ गई थी; यहां तक कि उनकी प्रार्थनाएं भी उनकी इच्छाओं से भ्रष्ट हो गई थीं (4:2, 3)।

क्या आज हमें ऐसी कोई दिक्कत है? हां! कलीसिया की अधिकतर समस्याएं इसी प्रश्न में हैं, ''इन्चार्ज कौन होगा या नियन्त्रण किसके पास होगा।'' ऐसी समस्याएं हमारी अपनी ही स्वार्थी इच्छाओं से बढ़ती हैं, जिनका वर्णन पिछले अध्याय में याकूब ने ''कड़वी डाह और विरोध'' के रूप में किया था। हम यह मानने लगते हैं कि हमारे पास हर सवाल का जवाब है और समझ नहीं पाते कि लोग नेतृत्व के लिए हमारी ओर क्यों नहीं देखते। जब लोग हमारी ओर नहीं देखते, तो हम उनका ध्यान अपनी ओर लाने के लिए लोगों और परिस्थितियों को बदलते हैं।

दिक्कत यह है कि याकूब द्वारा इस्तेमाल की गई भाषा इतनी बेतुकी, इतनी अतिरंजित लगती है कि हमें लगता है कि हमें अपनी छोटी-छोटी असहमतियों और कभी-कभी होने वाले स्टंटों को इतने बड़े नहीं मानना चाहिए। यदि हम तर्क की इस बात को लें तो हम केवल यही दिखाते हैं कि हमारे विश्वास हमें यीशु के आज्ञापालन के लिए कितने अधूरे ढंग से दासता में ले

गए हैं। क्या यीशु बात को बढ़ा-चढ़ा कर कह रहा था। जब उसने कहा कि जो कोई अपने भाई पर क्रोध करता है वह कचहरी के दण्ड का दोषी होगा (मत्ती 5:21, 22)। क्या यूहन्ना बढ़ा चढ़ाकर कह रहा था जब उसने कहा कि जो अपने भाई से प्रेम नहीं कर पाया वह कैन के जैसा है (1 यूहन्ना 3:11, 12)? हम ही हैं जिन्होंने स्थानीय कलीसिया में सही सम्बन्धों के महत्व को कम किया है। किसी भावुक भाई या बहन या जो किसी के साथ मिलकर नहीं चल सकता, गलत प्रकार की सहनशीलता से हम मुस्कुराहट बिखेरते हैं। दो सदस्यों के बाहर गिर जाने और एक दूसरे के साथ चलने की कोशिश न करने पर हम अपने कंधे उचकाते हैं। अच्छा होता कि हम ''युद्ध'' को सहन न करना या ''लड़ाइयों'' पर अपने कंधे उचकाना सीख लेते।

स्वार्थ का दण्ड (4:4-6)

हमारा अपना स्वार्थ उस शांति को खत्म कर रहा है, जिनसे धार्मिकता की उपज मिलनी थी। इसलिए याकूब अपनी आवाज़ धीमी कर देता है (4:4)। हमारे स्वार्थ ने न केवल दूसरों के साथ हमारे सम्बन्ध खराब किए हैं बल्कि इसने हमें परमेश्वर से भी अलग किया है। याकूब की बात को समझने के लिए हमें यह समझना आवश्यक है कि नये नियम में परमेश्वर के लोगों को उसकी दुल्हन के रूप में दिखाया गया है। प्रभु में हमारा विश्वास ''मैं करता हूं'' कहने में है। परमेश्वर की इच्छा के अलावा किसी भी अन्य इच्छा के वफ़ादार होने का अर्थ आत्मिक व्यभिचार करने के समान है। स्वार्थ से भरे संसार के व्यवहार से संचालित होने का अर्थ पूरी तरह से परमेश्वर के साथ वफ़ादारी के अयोग्य होना है। पसन्द तो चुननी ही पड़ेगी; या तो परमेश्वर के हाथ में नियन्त्रण देना होगा या फिर अपने हाथ में; दोनों को प्रधान नहीं बनाया जा सकता।

याकूब 4:5, ''क्या यह समझते हो, कि पवित्र शास्त्र व्यर्थ कहता है? जिस आत्मा को उसने हमारे भीतर बसाया है, क्या वह ऐसी लालसा करता है, जिसका प्रतिफल डाह हो?'' टीकाकार और व्याख्याकार के लिए समझना कठिन है। इस आयत में कुछ समस्याएं मिलती हैं। पहली तो यह कि ''पवित्र शास्त्र कहता है'' यह उम्मीद जगाता है कि कोई हवाला उद्धृत किया जाने वाला है, या कम से कम उसका संकेत है, पर यह उम्मीद पूरी नहीं होती। दूसरा, विद्वान इस पर ही सहमत नहीं हो सकते कि आयत के पिछले भाग का अनुवाद कैसे होना चाहिए। अलग-अलग अनुवाद इस बात को ध्यान में लाते हैं: ''... जो आत्मा हम में वास करती है, वह हम से डाह की लालसा करती है?'' (KJV); या ''उस आत्मा पर जिसने हम में वास करने पर बनाया ईर्ष्यापूर्वक ललकता है'' (RSV)। इन समस्याओं का समाधान करने वाले होने के बिना भी यह सोचना तर्कसंगत लगेगा कि हमारा परमेश्वर ईर्ष्या करने वाला परमेश्वर है और उसने विश्वास करने वाले को अपना आत्मा दिया है और वह बिना ईर्ष्या के इसी बात के साथ किसी विरोधी आत्मा को नहीं देख सकता। परमेश्वर हर हृदय के सम्पूर्ण व्यक्तिगत समर्पण की तमन्ना करता है।

परन्तु ईर्ष्या करने वाला यह परमेश्वर अनुग्रहकारी परमेश्वर है। याकूब कहता है, ''परमेश्वर अभिमानियों से विरोध करता है, पर दीनों पर अनुग्रह करता है'' (4:6)। हम पहले से जानते हैं कि परमेश्वर का आदर्श पूर्ण समर्पण है। पर हम सभी को यह मानना पड़ेगा कि ऐसे समय आते हैं जब हम ने अपनी मर्जी से किसी के पीछे चलने के लिए प्रभु का त्याग किया होगा। प्रभु

बड़ी-बड़ी मांगें करता और उन्हें पूरा करने के लिए बहुत सा अनुग्रह देता है। विश्वासियों के लिए पसन्द चुनने की बात स्पष्ट है। वे अपने आपको दीन बनाकर परमेश्वर के अनुग्रह को पा सकते हैं या अपनी सेवा करने वाले व्यवहार में बने रहकर परमेश्वर के विरोध का अनुभव कर सकते हैं।

पसन्द (4:7-10)

अपने जीवनों को स्वार्थ से छुड़ाकर परमेश्वर को नियन्त्रण दें। याकूब मसीही लोगों से अपनी इच्छाओं के आगे हार न मानकर ''परमेश्वर के अधीन'' (4:7) होने के लिए कहता है। ''अधीन'' शब्द मुख्यतया सैनिक शब्दावली का है और इसका अर्थ ''अधीन पद है।'' स्वार्थ के उपचार के लिए, मसीही व्यक्ति के लिए अपने आपको प्रभु के आदेशों के अधीन लाना आवश्यक है।

अधीनता बाइबल के कठिन विषयों में से एक है। कई बार जब हम इस शब्द को देखते हैं तो हम रुककर पूछते हैं, ''इसका अर्थ क्या है?'' या ''मैं इसे कैसे करूंगा?'' पर याकूब को यह दिक्कत नहीं है। याकूब उस अधीनता में पांच कदम बताकर विश्वासी के लिए अधीनता की तस्वीर को पूरा करता है।

पहला, ''शैतान का सामना करो, तो वह तुम्हारे पास से भाग निकलेगा'' (4:7)। शैतान में मसीही व्यक्ति पर बुराई को आकर्षक लगना बनाने की योग्यता के अलावा और कोई सामर्थ नहीं है। एक बार आप उस चमक से भाग गए और शैतान की माया का सामना कर लिया, तो याकूब वायदा करता है तो वह आपके सामने से भाग जाएगा।

दूसरा, ''परमेश्वर के निकट आओ तो वह भी तुम्हारे निकट आएगा'' (4:8)। हमारे पाप और स्वार्थ ने हमें परमेश्वर से अलग कर दिया है। हमारे स्वार्थ के उपचार के लिए विश्वासी के लिए प्रभु के साथ निकट सम्बन्ध में लौटना आवश्यक है।

तीसरा, ''... अपने हाथ शुद्ध करो; और हे दुचित्ते लोगों, अपने हृदय को पवित्र करो।'' (4:8)। याकूब जानता है कि जितना कोई प्रभु के निकट आएगा उतना ही पाप उसके जीवन में अरुचिकर हो जाएगा। स्वार्थ ने जीवन को दूषित कर दिया है जिस कारण शुद्धिकरण आवश्यक है। ''हाथ'' और ''हृदय'' शब्दों के साथ याकूब कह रहा है कि हमें अन्दर और बाहर दोनों से साफ़ होने की आवश्यकता है।

चौथा, ''दुखी हो, और शोक करो, और रोओ, तुम्हारी हंसी शोक में और तुम्हारा आनन्द उदासी में बदल जाए'' (4:9)। यीशु के शब्दों की धुन से (मत्ती 5:4) याकूब कहता है कि यदि हम सचमुच में परमेश्वर के अधीन होंगे, तो हमें सचमुच में पश्चात्ताप करना आवश्यक है।

पांचवां, ''प्रभु के सामने दीन बनो तो वह तुम्हें शिरोमणि बनाएगा'' (4:10)। हमें यह समझ होनी आवश्यक है कि हमें सृजा गया है और यहोवा सृजनहार है। जब हम यह समझ जाते हैं तो इससे हमें आज्ञापालन में सहायक मन बनाने में सहायता मिलती है। यह अपनी इच्छा को नहीं बल्कि स्वर्ग में अपने पिता की इच्छा को पूरी करने वाले सेवक के रूप में भूमिका को समझने में हमारी सहायता करता है। परमेश्वर के अधीन होने से बड़ी आत्मिक आशिषें मिलती हैं। जिस ऊंचाई की बात याकूब लिख रहा है वह उच्च जीवन के लिए है। जो तस्वीर याकूब ने दिखाई है वह शाही सम्राट के सामने दया की भीख मांगते एक गिर रहे व्यक्ति की है। सम्राट

सिंहासन पर से झुकता और उस फरियादी के चेहरे को भूमि पर से उठाता है। वह व्यक्ति यह जानते हुए कि राजा ने उसकी विनती स्वीकार कर ली है, बड़े आनन्द से उठता है।

सारांश

इस वचन पाठ में याकूब की बात का महत्व समझ आता है? क्या हमें समझ आया कि भाइयों के बीच ''लड़ाइयां और झगड़े'' गम्भीर बात हैं। क्या हमें दिखाई देता है कि ''लड़ाइयां और झगड़े'' हमारी स्वार्थी इच्छाओं के कारण हैं। क्या हम देख सकते हैं कि इन स्वार्थी इच्छाओं ने हमें परमेश्वर के साथ अपने सम्बन्ध में वेश्या बना दिया है। अपने आपको इन स्वार्थी इच्छाओं से छुड़ाने का एकमात्र ढंग परमेश्वर के सामने पूरी तरह से अपने आपको सौंप देना है।

क्या आपने अधीनता में अपने आपको परमेश्वर को दे दिया है।